SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

नियोजन काल में व्यापारिक बैंकों का विकास

ललित मोहन चौधरी, अर्थशास्त्र विभाग,
भद्रकाली कॉलेज इटखोरी, चतरा, झारखंड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author

ललित मोहन चौधरी, अर्थशास्त्र विभाग,
भद्रकाली कॉलेज इटखोरी, चतरा, झारखंड, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

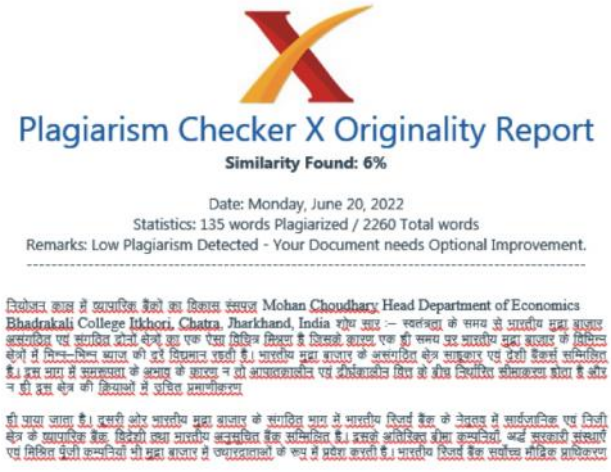

Received on : 20/06/2022
Revised on : -----
Accepted on : 27/06/2022
Plagiarism : 06% on 20/06/2022

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 6%

Date: Monday, June 20, 2022
Statistics: 135 words Plagiarized / 2260 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

शोध सार

स्वतंत्रता के समय से भारतीय मुद्रा बाजार असंगठित एवं संगठित दोनों क्षेत्रों का ऐसा विचित्र मिश्रण है जिसके कारण एक ही समय पर भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न ब्याज की दरें विद्यमान रहती है। भारतीय मुद्रा बाजार के असंगठित क्षेत्र में साहूकार एवं देशी बैंकर्स सम्मिलित है। इस भाग में समरूपता के अभाव के कारण न तो आपातकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त के बीच निर्धारित सीमाकरण होता है और न ही इस क्षेत्र की क्रियाओं में उचित प्रमाणीकरण ही पाया जाता है। दूसरी ओर भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित भाग में भारतीय रिजर्व बैंक के नेतृत्व में सार्वजानिक एवं निजी क्षेत्र के व्यापारिक बैंक, विदेषी तथा भारतीय अनुसूचित बैंक सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त बीमा कम्पनियाँ, अर्द्ध सरकारी संस्थाएँ एवं मिश्रित पूँजी कम्पनियाँ भी मुद्रा बाजार में उधारदाताओं के रूप में प्रवेश करती है। भारतीय रिजर्व बैंक सर्वोच्च मौद्रिक प्राधिकरण के रूप में कार्य करते हुए संगठित मुद्रा बाजार का संचालन एवं नियमन करता है।

मुख्य शब्द

पूँजी बाजार, व्यापारिक बैंक, नियोजन कम्पनियाँ, बैंकिंग संस्थाएँ, राष्ट्रीयकरण.

प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पूर्व अर्थव्यवस्था में कृषि व्यवस्था की प्रधानता होने के कारण देश में पूँजी बाजार विकसित नहीं हो सका। स्वतंत्रता के बाद नियोजन के आरम्भिक वर्ष 1951 से भारतीय पूँजी बाजार विकसित एवं विस्तृत होने लगा। साथ ही, बचत एवं निवेश के आकार में पर्याप्त रूप से वृद्धि होने लगी। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने निजी क्षेत्र के उद्योगों को वित्तीय सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से अनेक वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की जिनमें

प्रमुख हैं – भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI - 1948), राज्य वित्त विभाग (SFC - 1951), भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम (ICICI – 1955), भारतीय औद्यगिक विकास बैंक (IDBI – 1964), भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI – 1964)। पिछले दो दशकों में भारतीय पूँजी बाजार का तेजी से विकास हुआ है। विनियोजकों के हितों की रक्षार्थ अनेक प्रभावी कदम उठाए गए हैं। पूँजी बाजार की क्रियाओं में विविधकरण (Diversification) देखने को मिलता है और साथ ही पूँजी बाजार के सौदों की मात्रा में भी तेजी से वृद्धि हुई है। पूँजी बाजार को घोषित करने वाले नए वित्तीय संस्थान स्थापित हुए हैं तथा अनेक प्रकार की गैर बैंकिंग संस्थाएँ (NBFI) स्थापित की गई हैं जिनमें प्रमुख है:

1. लीजिंग एवं किराया खरीद कम्पनियाँ, (Leasing and Hire Purchase Companies)
2. व्यापारिक बैंकिंग, (Merchant Banking)
3. पारस्परिक निधियाँ, (Mutual Funds)
4. जोखिम पूँजी कम्पनियाँ, (Venture Capital Companies)

अस्सी और नब्बे के दशकों में भारतीय पूँजी बाजार की क्रियाएँ विस्तृत हुई हैं। देश में शेयर बाजारों की संख्या तेजी से बढ़ी है और साथ ही शेयर बाजारों में पंजीकृत कम्पनियों की संख्या का भी विस्तार हुआ है। वर्तमान में भारत में पूँजी बाजार की सुदृढ़ता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि देश में शेयर बाजारों में सूचीबद्ध कम्पनियों की संख्या– 1996 में 8800 थी और इस दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान था।

यद्यपि नब्बे के दशक में अपनाए गए आर्थिक सुधारों और उदारीकरण से भारतीय पूँजी बाजार में विदेशों का अर्न्तप्रवाह बढ़ा है और पंजीकृत विदेशी संस्थागत निवेशकों की संख्या में वृद्धि हुई है, किन्तु भारत का पूँजी बाजार देश में राजनीतिक अस्थिरता के चलते विदेशी निवेशकों को वांछित रूप से आकर्षित नहीं कर पा रहा है। इसके अतिरिक्त प्रतिभूतियों के लेन–देन में होने वाली धोखाधड़ी एवं फर्जी प्रमाण–पत्रों के कारोबार ने समय–समय पर भारतीय पूँजी बाजार की गतिविधियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। निक्षेप निधि की स्थापना एवं परिचालन द्वारा निःसन्देह इन दोषों का समाधान भारतीय पूँजी बाजार को मिलेगा, किन्तु अर्थव्यवस्था के तेजी से होते भूमण्डलीकरण में भारतीय पूँजी को प्रत्येक स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय मानको के अनुरूप बनाना पड़ेगा। भारतीय पूँजी बाजार में पारदर्शिता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए तभी स्वदेशी एवं विदेशी निवेशकों का रूझाना भारतीय पूँजी बाजार की ओर अधिक किया जा सकेगा तथा अर्थव्यवस्था में पर्याप्त संसाधन एकत्रित करने में सफलता मिलेगी।

नियोजन काल में व्यापारिक बैंकों का विकास

नियोजन काल में व्यापारिक बैंकिंग के विकास को दो भोगों में बाँटा जा सकता है:

भारतीय रिजर्व बैंक के राष्ट्रीयकरण एवं बैंकिंग नियमन अधिनियम के बाद भारतीय बैंकिग व्यवस्था में संरचानात्मक रूप से भौगोलिक एंव कार्यात्मक परिवर्तन किए गए। 01 जुलाई 1955 को भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना की गई। इसके साथ अन्य 8 (जो वर्तमान में 7 हैं) बैंकों को इसके सहायक बैंक के रूप में बदल दिया गया जिन्हें स्टेट बैंक समूह के बैंक कहा जाता है। वर्ष 1949 के बाद व्यापारिक बैंकों की ऋण नीति में यद्यपि संशोधन किए गए और अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को व्यापारिक बैंकों के ऋणों के साथ जोड़ने के नीतिगत उपाय किए गए, किन्तु 1949 से 1969 के दो दशकों की अवधि में न केवल शहरों में केन्द्रित औद्योगिक क्षेत्र को ही बड़ी मात्रा में दीर्घकालीन ऋण दिए गए, बल्कि कृषि एवं उससे जुड़ी क्रियाओं तथा लघु एवं कुटीर उद्योग की क्रियाओं को भी ऋण आवंटन में प्रायः उपेक्षित ही रखा गया। भारतीय रिजर्व बैंक देश का सर्वोच्च मौद्रिक नियमन प्राधिकरण होते हुए भी व्यापारिक बैंकिंग को सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ने में असफल रहा। व्यापारिक बैंक पूँजिपतियों के हाथों निजी लाभ अर्जन के स्त्रोत बन गए और परिणामस्वरूप आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण बढ़ता गया। बैंकिंग क्रियाओं को नियोजित विकास की वांछित धारा से जोड़ने के लिए सामाजिक नियंत्रण नीति घोषित करके सरकार ने आपत्तिजनक एवं गैर– वरीयता प्राप्त बैंकिंग क्रियाओं को समाप्त करने का प्रयास किया। किन्तु सरकार का यह

प्रयास भी असफल रहा और बाध्य होकर सरकार को 19 जुलाई, 1969 को 14 बड़े व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना पड़ा।

व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समय देश में बैंकों की कुल 8262 शाखाएं थी, जिसमें 1860 (अर्थात् कुल का 22.4 प्रशित) शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में थी। 30 जून, 1969 को देश में प्रति व्यापारिक बैंक 65000 व्यक्ति थे।

1968 में अपनाए सामाजिक नियंत्रण प्रयासों के असफल हो जाने के बाद बैंकों का स्वामित्व एवं प्रबन्ध दोनों ही सरकार के हाथों लेने के उद्देश्य से सरकार ने एक अध्यादेश द्वारा 19 जुलाई, 1969 को 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। बैंकों पर कुछ पूँजीपतियों के नियंत्रण को समाप्त करने, बैंकिंग सुविधाओं को ग्रामीण क्षेत्रों तक विकसित करने, कृषि क्रियाओं, लघु एवं कटीर उद्योगों के लिए पर्याप्त ऋण सुविधाएं उपलब्ध कराने और देश के विकासोन्मुख नियोजन में बैंकों की सफल भागीदारी सुनिश्चित करने की दृष्टि से किया गया बैंकों का राष्ट्रीयकरण देश में हरित क्रांति की सफलता में सहायक बना। साथ ही बैंक साख उपलब्धि से प्रायः वंचित ग्रामीण अंचलों का विकास हुआ। राष्ट्रीयकरण के कारण ही भारतीय कृषि को उत्पादन की परम्परागत पद्धति से निकाल कर वैज्ञानिक एवं आधुनिक कृषि की ओर मुड़ने में सफलता मिली। अर्थव्यवस्था के ग्रामीण क्षेत्र में कृषि एवं उससे संबंधित क्रियाओं का बैंक राष्ट्रीयकरण के बाद प्रर्याप्त विस्तार हुआ और ग्रामीण भारत में नई सामाजिक शक्तियों का अभ्युदय हुआ। व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के प्रथम चरण से प्राप्त सफलता से प्रेरित होकर ही 15 अप्रैल, 1980 को पुनः छः नए व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या के इस विस्तार ने न केवल देश के दूरस्थ क्षेत्रों तक बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराई है, बल्कि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में विविध क्रियाओं के लिए वित्त पोषण करके साख सुविधाओं का भी विस्तार किया है और देश के गरीब कृषक वर्ग को महाजन और साहूकार के चंगुल से निकालने में भूमिका निभाई है। यही नहीं व्यापारिक बैंकों ने देश के चहुँमुखी औद्योगिक विकास को पर्याप्त साख उपलब्ध कराकर देश के विकास की गति को आगे बढ़ाने में सहायता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त बैंकों ने राष्ट्रीयकरण के बाद बचत को प्रोत्साहित करके उसे विभिन्न विकासोन्मुख कार्यक्रमों में विनियोजित करने और देश की विभिन्न वित्तीय योजनाओं के वित्त पोशण में भी सक्रिय भूमिका निभाई है।

1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण केवल 22.4 प्रतिशत भाग ही ग्रामीण अंचलों में स्थित था, वहीं राष्ट्रीयकरण के दोनों चरणों के बाद बैंकों की शाखाओं में तेजी से विस्तार हुआ। 30 जून, 1996 की स्थिति के अनुसार देश में व्यापारिक बैंकों की संख्या बढ़कर 62881 हो गई। जून 1969 के बाद सभी अनुसूचित बैंकों द्वारा खोली गई नई शाखाओं की 61 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित की गई है।

भारत में बैंकिंग सुधार कमेटी

स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान तक भारतीय अर्थव्यस्था में बैंकिंग क्षेत्र ने अनेक उतार–चढ़ाव देखे हैं। स्वतंत्रता से पूर्व देश के बैंकिंग क्षेत्र का स्वरूप पूरी तरह से पूँजीवादी था तथा वाणिज्यिक बैंक मुख्य रूप से औद्योगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों की आवश्यकताओं एवं हितों की पूर्ति करते थे। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिए गए उधारों में कृषि, लघु उद्योग, अति लघु उद्योग, स्वरोजगार में रत छोटे–मोटे व्यवसायियों को प्राप्त होने वाला भाग नगण्य था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी स्थिति में जब कोई परिवर्तन नहीं आया तथा सामाजिक बैंकिंग की दिशा में वाणिज्यिक बैंकों ने उदासीन रवैया जारी रखा तो अन्ततः सरकार को 19 जुलाई, 1969 में देश के 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके उन्हें सरकार स्वामित्व में लेना पड़ा। बाद में 15 अप्रैल, 1980 को 6 और वाणिज्यिक बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

बैंकिंग क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी कदम था। इससे बैंकों की कार्य प्रणाली तथा ऋण देने की नीतियों में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ। भारतीय रिजर्व बैंक तथा सरकार के सीधे नियंत्रण में आ जाने पर बैंकों ने सरकार की नीतियों के अनुरूप उस समय तक उपेक्षित रहे सीमान्त एवं लघु कृषकों, लघु एवं अति लघु उद्यमियों, समाज के कमजोर वर्गों की साख संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरकार द्वारा बैंकों के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि वे अपनी कुल साख का 40 प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्रक–कृषि, लघु उद्योग, समाज के

कमजोर वर्गों, आधारभूत संरचना मूलक क्षेत्रों को वितरित करेंगे तथा इस प्रकार से वितरित ऋणों पर कम–से–कम ब्याज लेने की नीति अपनाएंगे। बैंक द्वारा वितरित ऋणों पर ली जाने वाली ब्याज दरों एवं बैंकों द्वारा स्वीकार किए गए निक्षेपों पद दी जाने वाली ब्याज की दरों का निर्धारण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाने लगा जो केन्द्र सरकार के दिशा निर्देशों के तहत प्राथमिक क्षेत्र के लिए नीची ब्याज दर निर्धारित करके उससे होने वाली हानि की भरपायी निगमित क्षेत्र के लिए उँची ब्याज दर निर्धारित करके करता था। इतना ही नहीं बैंकों के लिए सांविधिक तरलता अनुपात की दरों को उँचा रख कर सरकार ने नीची प्रतिफल दर वाली सरकारी प्रतिभूतियों के माध्यम से बैंकों के कोषों का प्रयोग लोक–लुभावन नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए किया। इन्हीं नीतियों के तहत देश के विभिन्न भागों में ऋण मेले आयोजित किए गए जिनमें बिना किसी की जमानत लिए करोड़ों रूपए के ऋण वितरित कर दिए गए। बाद में इनमें से अधिकांश ऋणों की वसूली नहीं हो पायी, तो राजनीतिक कारणों से इन्हें माफ कर दिया गया।

इन समस्त कारणों से बैंकों की लाभप्रदत्ता कम हुई जिसे पूरा करने के लिए बैंकों ने कुछ ऐसे उपाय अपनाए जो न केवल अविवेकपूर्ण थे, वरन् उनमें अदूरदर्शिता तथा अपरादर्शिता का पुट विद्यमान था। लाभप्रदत्ता को बढ़ाने के लिए बैंकों ने तात्कालिक तौर पर निम्नलिखित उपाय किएः

पूर्व में वितरित सभी ऋणों पर अर्जित ब्याज को प्राप्तियों में दर्शाया, भले ही वास्तविक रूप से ये बैंकों को प्राप्त हुई हों या न हुई हो। इससे काल्पनिक तौर पर बैंकों की आय बढ़ती दिखाई दी तथा अनेक बैंकों ने स्वयं को लाभ की स्थिति में दर्शाया, जबकि वास्तविक तौर पर वे घाटे में चल रहे थे।

भारतीय शेयर बाजार में तेजी के रूप को देखते हुए कम समय में भारी लाभ कमा लेने की आशा में नियमों एवं कार्य प्रणाली के मानको की उपेक्षा करते हुए निजी दलालों के माध्यम से शेयरों की खरीद की गई। बाद में जब पूँजी बाजार में मंदी का दौर चला, तो भारतीय बैंकों को करोड़ों रूपए की हानि हुई। वर्ष 1992 का शेयर घोटाला मुख्य रूप से बैंकों की इसी नीति का दुष्परिणाम था।

देश के प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों ने परोक्ष रूप से पूँजी बाजार में उतरने के लिए अपनी सहयोगी संस्था के रूप में म्युचवल फण्डों की स्थापना की तथा इन म्युचवल फण्ड़ों के माध्यम से पूँजी बाजार में निवेश किया जिस पर मन्दीकाल में भारी हानि उठाने पड़ी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त कारणों से बैंकों की विश्वसनीयता कम हुई, उनकी लाभ प्रदत्ता अत्यधिक निचले स्तर पर आ गई, उनके पास आवश्यकताओं के अनुरूप कोष नहीं रहे, कुल आस्तियों में गैर–निष्पादनीय आस्तियों को अनुपात बहुत बढ़ गया। 1991 में प्रारम्भ किए गए आर्थिक सुधारों एवं उदारीकरण के दौर में पूँजी बाजार, विदेश व्यापार तथा अन्य आर्थिक सुधारों एवं उदारीकरण के दौर में पूँजी बाजार, विदेश व्यापार तथा अन्य आर्थिक गतिविधियों से लेनदेन में वृद्धि हुई। वृद्धि से बैंकों के कामकाज में भी भारी वृद्धि हुई, परन्तु कर्मचारियों की कार्य न करने की संस्कृति, गैर–कम्प्यूटरीकृत कार्य प्रणाली तथा दोषपूर्ण संप्रेषण व्यवस्था से वे बढ़े कारोबार को त्वरित ढंग से निपटाने में असफल रहें।

संदर्भ सूची

1. Palmer and Perkins – International Relation, Third Edition, PP.- 468-69.
2. Hubert Herring – A History of Latin America (New York, 1955)
3. दिनमान 14–20 मार्च – 1982, पृ0 – 33
4. Bandyopadhyaya Jayantanuja, *The Making of India's Foreign Policy*, Determinants Institute Process and Personalities, New Delhi, 1980, P.- 29

5. See Nort Man D. Palmer – Indian Political System, London, 1961. PP. – 238-41
6. Michael Breacher Nehru – A Political Biography, London, 1959, P.- 67
7. राजन एम0एस0, *'इण्डिया इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स इन दी पोस्ट नेहरू ऐरा,* के0पी0 मिश्रा सम्पादित, स्टडीज इन फॉरेन पॉलिसी, विकास, नई दिल्ली 1969
8. रिपोर्ट – 1977, तथा रिपोर्ट – 1978–79, भारत सरकार, विदेष मंत्रालय, नई दिल्ली।
9. जैन श्रीपाल, अमेरीका की एशिया नीति, दिनमान, जनवरी 1978 पर आधारित।
10. M.V. Kamath – Changing Power Pattern, The Times of India, July- 20, 1971.
11. Steven J. Rosen and Walter S. Jones – The Logic of International Relation, 1975, P.- 119
12. Major problems of United States Foregion, Policy, 1949-1950 Washington D.C. The Brooking Institution, 1949, P.- 93.
13. U.N. Weekly Bulletin, New Yourk, 01 October, 1949, P.- 365.

****